नियमसार, गाथा ९६ की टीका। फिर से लेनी है न?

यह, अनन्त चतुष्टयात्मक निज आत्मा... पहली व्याख्या यह की कि यह निज आत्मा अन्दर कैसा है? अनन्त चतुष्टयस्वरूप। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, **अनन्त चतुष्टयात्मक निज आत्मा...** अन्दर अपना आत्मा। प्रत्येक का आत्मा। उसके ध्यान का उपदेश है। यह ध्यान है, वह पर्याय है। पहले कहा, वह आत्मा कहा। त्रिकाली आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन चतुष्टयस्वरूप, उसका ध्यान और उसकी एकाग्रता, उसका आश्रय, यह उसका उपदेश है। प्रत्याख्यान की बात है न? पच्चखाण की बात।

समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त,... किसे कहते हैं या यह शिक्षा दी जाती है। **समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त,...** है। विकल्प आदि बाहर की वासना की वृत्तियाँ, शुभ की वृत्तियों से भी विमुक्त है। आहाहा! देह की क्रिया और वाणी की क्रिया की तो बात अलग, वह तो जड़ है। अन्दर में विकल्प की वृत्ति उठे, राग दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, उस वासना से विमुक्त है। **निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** और अन्तर्मुख रहने में कुछ बाकी नहीं रखा। अन्तर्मुख जिसका झुकाव है। आहाहा! आत्मा अन्तर अनन्त चतुष्टय की ओर पूरा-पूरा अन्तर्मुख, अवशेष—कुछ बाकी रखे बिना निरवशेष। अन्तर्मुख चैतन्य चतुष्टय आत्मा, अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य, उसमें जिसकी सन्मुखता अर्थात् झुकाव है। कुछ बाकी रखे बिना, पर्याय आश्रय भी नहीं अर्थात् पूर्ण-पूर्ण आश्रय से उसे जिसका ध्यान है।

अन्तर्मुख परमतत्त्व-ज्ञानी जीव... आहाहा! परमतत्त्वज्ञानी, जिसे परम आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, राग के विकल्प से भिन्न पड़कर (हुआ), उसे यह प्रत्याख्यान कहते हैं। ऐसे जीव को शिक्षा दी गयी है। ऐसे जीव को शिक्षा दी गयी है। आहाहा! **किस प्रकार? इस प्रकारः—सादि-अनन्त....** आत्मा में जो केवलज्ञान-केवलदर्शन होता है, वह सादि-अनन्त है। अनादि से पर्याय नहीं है। अनादि से अन्दर चतुष्टय की शक्ति है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द-वीर्य। परन्तु पर्याय है, उसकी सादि है। सादि अर्थात् आदि है और उसका अन्त नहीं है।

सादि-अनन्त अमूर्त... प्रभु तो अमूर्त है। आहाहा! **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** अतीन्द्रिय स्वभाववाला आत्मतत्त्व, उसे **शुद्धसद्भूतव्यवहार से,...** शुद्ध सद्भूतव्यवहार से। निश्चय से अभी नहीं। बाद में निश्चय से कहेंगे। जो कहना है चतुष्टय का यह ध्यान, वह बाद में कहेंगे, परन्तु पहले ध्यान की पर्याय ऐसी होती है। केवलज्ञान-केवलदर्शन-अनन्त आनन्द, वह सद्भूतव्यवहारनय है; निश्चयनय नहीं। आहाहा! क्योंकि नहीं थी, वह पर्याय प्रगट हुई है; और पर्याय है, वह व्यवहार है; और इसमें है, इसलिए सद्भूत है, परन्तु पर्याय है, इसलिए व्यवहार है और शुद्ध है, पवित्र है, इसलिए शुद्ध है।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, यह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से पर्याय में प्रगट हुए हैं। किसकी भाँति? दृष्टान्त है। **शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत...** एक परमाणु लेना, एक परमाणु पृथक्। उसका **शुद्ध स्पर्श-शुद्ध रस-शुद्ध गन्ध-शुद्ध वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु...** यह सद्भूतव्यवहारनय हुआ। गुणी जो परमाणु, उसके **शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के...** ये गुण, गुणी और गुण—ऐसा भेद है, वह सद्भूतव्यवहार हुआ। समझ में आया? एक परमाणु शुद्ध है, उसके स्पर्श, रस, गन्ध अन्दर शुद्ध हैं परन्तु वे गुणी के गुण हैं, इसका नाम शुद्धसद्भूतव्यवहार कहने में आता है। निश्चय तो द्रव्य है। आहाहा! यह तो दृष्टान्त देते हैं।

शुद्धसद्भूतव्यवहार से, शुद्ध स्पर्श... यह तो वहाँ केवलज्ञान कहा था। दृष्टान्त में आता है। **शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति,...** शुद्ध परमाणु एक परमाणु की भाँति... आहाहा! **जो केवलज्ञान,...** आत्मा में होता है। आहाहा! शुद्ध परमाणु जो एक है परमाणु। उसके-शुद्ध परमाणु के शुद्ध स्पर्श, रस, गन्ध जो गुण हैं, वे सद्भूतव्यवहारनय से है। शुद्ध हैं और उसमें हैं परन्तु पर्याय भेद है, उसे शुद्धसद्भूतव्यवहारनय कहा जाता है। समझ में आया?

शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति,... यह दृष्टान्त दिया। इसकी भाँति। शुद्ध एक रजकण है, उसका शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण है, उसका आधार—ऐसा जो भेद पड़ा, वह शुद्धसद्भूतव्यवहार है। उसकी **भाँति, जो केवलज्ञान,...** आहाहा! आत्मा में जो उत्पन्न हुआ केवलज्ञान, वह सद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा! उत्पन्न होता है न? पर्याय है, वह व्यवहार है और उसका उसमें है, वह सद्भूत

है और शुद्ध है। अब शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से। है ?

अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति, जो केवलज्ञान, केवलदर्शन,... बीच में तो दृष्टान्त दिया। आहाहा! दृष्टान्त भी सूक्ष्म है। एक परमाणु है, वह शुद्ध है, दूसरे परमाणु का उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए एक परमाणु जो शुद्ध है, उसके गुण शुद्ध हैं। स्पर्श-वर्ण-गन्ध-रस शुद्ध। एक गुणी, ऐसा परमाणु, उसके शुद्ध जो स्पर्श, रस, गन्ध आदि, उन्हें यहाँ शुद्धसद्भूतव्यवहारनय... क्योंकि शुद्ध है, सद्भूत उसमें है परन्तु भेद है; इसलिए व्यवहार है। आहाहा! इतना सब याद रखना।

इस प्रकार:— अकेला आत्मा, वह शुद्ध है। उसके आश्रय से **केवलज्ञान, केवलदर्शन,...** है ? **केवलसुख तथा केवल...** वीर्य। शक्ति अर्थात् वीर्य। ऐसा **परमात्मा, सो मैं हूँ,...** ऐसी दशा पर्याय में हो, वह मैं हूँ। यह सद्भूतव्यवहारनय का विषय, वह मैं हूँ। पर्याय में, हों! आहाहा! ऐसा है। ऐसा याद कब रहे ? आत्मा को भिन्न बताते हैं। परमतत्त्वज्ञानी को ध्यान का उपदेश करते हैं कि प्रभु! जैसे परमाणु शुद्ध है, उसके गुण भी शुद्ध हैं परन्तु इतना भेद डालना, वह शुद्धसद्भूतव्यवहार है। उसी प्रकार भगवान आत्मा द्रव्य है, वह शुद्ध है परन्तु उसमें से केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य प्रगट हो, वह पर्याय है। परन्तु वह शुद्ध है और सद्भूत - उसमें है। परन्तु पर्याय है, इसलिए व्यवहार है। शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख और केवलवीर्य पर्याय में है। समझ में आया ? आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है।

यह **परमात्मा सो मैं हूँ, ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;...** ऐसे शुद्धसद्भूत-व्यवहारनय की पर्याय प्रगट करने के लिये ऐसी भावना करना चाहिए। आहाहा! जिसे-आत्मा को केवलज्ञान, केवलदर्शन और परम आनन्द प्रगट करना है, उसे मैं आत्मा निश्चय से वस्तु, परन्तु पर्याय में केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, वह मेरी पर्याय में सद्भूतरूप से शुद्ध परन्तु पर्याय है; इसलिए व्यवहार है। शुद्धसद्भूतव्यवहारनय की भावना करना। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! **ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;... परमात्मा सो मैं हूँ, ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;...** पर्याय में ऐसा हूँ। ऐसा हूँ - ऐसी भावना करनी चाहिए। आहाहा! समझ में आया ?

परमाणु तो परमाणुरूप से है। शुद्ध है। दूसरे परमाणु के साथ उसे सम्बन्ध नहीं है। उसके जो शुद्ध गुण, वह गुणी ऐसा द्रव्य, उसके गुण का भेद डालना, वह शुद्धसद्भूत-व्यवहारनय है। इसी प्रकार यहाँ आत्मा-भगवान आत्मा अनन्त गुण का शुद्ध चैतन्यतत्त्व है, उसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्याय, वह शुद्ध है। अपने में है परन्तु पर्याय है; इसलिए शुद्धसद्भूतव्यवहारनय उसे कहा जाता है। पहले यह बात ली है। ऐसे केवलज्ञानादि शुद्धसद्भूतव्यवहारनय की भावना करनी चाहिए। आहाहा! ऐसा उपदेश! ऐसी सूक्ष्म बातें, लो! इसमें क्या करना? यह तो कहते हैं न, परमतत्त्वज्ञानी को ऐसा करना चाहिए। उसका तो यह उपदेश है। आहाहा!

और... यह सद्भूतव्यवहारनय का विषय हुआ। केवलज्ञान प्रगट करना है, उसकी बात हुई। प्रगट करना है, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, यह पर्याय प्रगट करनी है, उसकी पहले बात की। इसलिए उसे शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से वह केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य जो सिद्ध को प्रगट हुए, केवली को प्रगट हुए, वे मुझे प्रगट हों, ऐसी भावना करनी चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु : हूँ या होनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हूँ नहीं। हूँ तो केवलज्ञानी त्रिकाली है, यह तो होने के योग्य की भावना करनी चाहिए। त्रिकाली शुद्ध नहीं वह अब आता है। समझ में आया? ऐसी भावना करनी चाहिए। आहाहा! यह तो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय है न? पर्याय है न? पर्याय प्रगट करने की भावना करनी चाहिए। आहाहा!

एक तो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय और उसका-परमाणु का दृष्टान्त। परमाणु में शुद्ध स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण यह शुद्धसद्भूतव्यवहार है। आहाहा! उसी प्रकार यह भगवान आत्मा अन्दर में जो अनन्त ज्ञान है, वह तो बाद में कहते हैं। परन्तु यह तो प्रगट करने की प्रथम भावना करनी चाहिए। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को प्रगट करने की भावना करनी चाहिए। आहाहा! व्यवहारनय की भावना करना और राग करना, दया पालना, यह नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! वैसे चार ज्ञानरूप रहूँ, यह भी नहीं। तीन ज्ञान, तीन दर्शन—चक्षु-अचक्षु, अवधि चार ज्ञान, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय

यह भी नहीं। वे तो अपूर्ण हैं। यह तो पूर्ण पर्याय है। पूर्ण पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख और केवल वीर्य, यह सद्भूतव्यवहार के पर्याय की भावना करनी चाहिए। आहाहा! व्यवहार की भावना छोड़ना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा उपदेश है। इसमें क्या करना? हाथ लगे-पड़े नहीं तथा और कहते हैं परमतत्त्वज्ञानी को ऐसा उपदेश देते हैं कि परमतत्त्वज्ञानी को ऐसा करना चाहिए। वह करनेयोग्य तो यह है। यह अपूर्ण रहना, वह नहीं। आहाहा! राग करना, पुण्य करना, दया, दान, व्रत करना, व्यवहाररत्नत्रय की भावना करना, वह तो कहीं रह गया परन्तु अपूर्ण ज्ञान और अपूर्ण दर्शनरूप रहना, वह नहीं। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन और पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्यरूप रहना - होना, प्रगट करूँ—ऐसी भावना करनी चाहिए। यह शुद्धव्यवहारनय से कहा है। यह व्यवहार कहा। वे दया, दान, व्रत और भक्ति नहीं। यहाँ व्यवहार असद्भूतव्यवहार निकाल दिया है। आहाहा! उसे तो निकाल दिया है परन्तु चार ज्ञानरूप रहना, वह भी निकाल दिया है।

यहाँ तो अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसा जो पर्याय भाग; वस्तु शुद्ध है, आत्मा द्रव्य शुद्ध है, उसकी यह पर्याय शुद्ध है। उसे यहाँ शुद्ध शुद्धसद्भूतव्यवहारनय है, इसलिए उसकी भावना करना। आहाहा! समझ में आया इसमें? सूक्ष्म बात है, भाई! अभी चलता नहीं, इसलिए लोगों को लगता है कि और यह क्या होगा? मार्ग यह है, बापू! वीतराग जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ की ध्वनि यह है। उनका उपदेश यह है। उसे दूसरे प्रकार से खतौनी कर डालना (कि) व्यवहार से होगा, व्यवहार करते-करते होगा - यह सब विपरीत दृष्टि है। यह उपदेश उल्टा है। आहाहा! है या नहीं सामने? आहाहा!

ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;... प्रगट करने की। आहाहा! प्रगट करने की (यह) भाषा ली नहीं है। मैं ऐसा ही हूँ। पर्याय से ऐसा हूँ। यही मेरा स्वरूप इतना ही है। आहाहा! पर्याय में केवलज्ञान, केवलदर्शन इतना ही मैं हूँ। पर्याय में इतना मैं हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : भावी नैगमनय से ऐसी भावना करनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावी नैगमनय नहीं। शुद्धसद्भूतव्यवहार है। नैगम नहीं। शुद्धसद्भूत अपनी पर्याय अपने में है। अपने में होती है, इसलिए शुद्धसद्भूत है।

यहाँ तो देखो न, ऐसा कहा या नहीं ? ऐसा केवल सुख आदि **परमात्मा सो मैं हूँ,...** वह मैं हूँ। पर्याय, हों! द्रव्य नहीं। आहाहा! अपूर्ण ज्ञान, अपूर्ण दर्शन, अपूर्ण चारित्र और (अपूर्ण) वीर्य, यह बात नहीं है। पर्याय में ऐसा नहीं है। पर्याय में पूर्ण केवलज्ञान, वह मैं हूँ। आहाहा! धवल में एक पाठ है कि सम्यक् मति-श्रुतज्ञान होता है। मति और श्रुतज्ञान सम्यक् होता है, तब आत्मा का अन्दर स्वरूपश्रद्धान, वह मतिज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है। मतिज्ञान अपूर्ण ज्ञान रहूँ - ऐसा नहीं। ऐसा धवल में पाठ है। मतिज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है-ऐसा पाठ है। केवलज्ञान आओ... आओ... आओ... अब अल्प काल में केवलज्ञान होओ। ऐसी बातें हैं।

वीतराग जिनपरमेश्वर की बातें, बापू! दुनिया में कहीं नहीं है। आहाहा! उनके - वीतराग के घर के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं है। आहाहा! जिसने केवलज्ञान में तीन काल तीन लोक देखे-जाने हैं। भगवान विराजते हैं, महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। उस वाणी को मुनि जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। अब निश्चय। यह व्यवहार था, पर्याय प्रगट हुई, वैसा मैं हूँ। आहाहा! ऐसा मैं हूँ। प्रगट होनेवाला ही है, इसलिए ऐसा मैं हूँ, ऐसा जोर किया है। मुझे केवलज्ञान होनेवाला है, केवलदर्शन होनेवाला ही है। मति-श्रुतज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ, यह तत्त्वज्ञान हुआ, उसे केवलज्ञान होनेवाला ही है; इसलिए मैं केवलज्ञान हूँ। आहाहा! है इसमें, देखो! इसमें कोई आड़ा-टेढ़ा निकले, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा!

केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख तथा केवलशक्तियुक्त... सहित। ऐसी शक्तियुक्त **परमात्मा सो मैं हूँ,...** आहाहा! बाद में निश्चय की बात कहेंगे। पहले पर्याय की बात करते हैं क्योंकि पर्याय प्रगट करनी है। द्रव्य तो पड़ा ही है। **ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;...** आहाहा! इसमें बोल याद रहना कठिन है, इतने बोल आते हैं। उसमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, वैयावृत्त्य आदि... जाओ। मिच्छामि दुक्कडम् हो गयी सामायिक। तत्सूत्रीकरणेणम्। कहीं धूल में थी ? आहाहा! यह तो एक-एक लाईन बहुत गम्भीर, बहुत गहरी। गहरी विचारणा अपेक्षित है। दीर्घ विचार से कहा गया है। आहाहा!

तत्त्वज्ञानियों को केवलज्ञान और केवलदर्शन हूँ—ऐसी भावना करना चाहिए।

आहाहा! गजब बात है। पंचम काल के साधु, पंचम काल के जीव ऐसा मानते और ऐसा जानते हैं। ऐसा मानते हैं, जानते हैं और वे भावना ऐसी करते हैं... आहाहा! साधु को यह भावना होती है... आहाहा! व्यवहार करूँ, यह तो नहीं। दूसरों का कर दूँ, दूसरों को उपदेश देकर समझा दूँ, यह बात तो नहीं। कहीं रह गयी। आहाहा! परन्तु प्रगट करने में भी अधूरी व्यवहाररत्नत्रय तो नहीं, परन्तु अपूर्ण भी नहीं। आहाहा! वाणी तो देखो! वाणी, त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है। आठ वर्ष का बालक तत्त्वज्ञानी अर्थात् आत्मज्ञानी होता है। तत्त्व अर्थात् आत्मा का ज्ञान करे, वह इस प्रकार से व्यवहार की गन्ध उड़ाकर अपनी पर्याय में निर्मल केवलज्ञानादि, वह परमात्मा वह मैं हूँ। आहाहा!

आठ वर्ष का बालक मुनि होता है, दीक्षित होता है, कमण्डल और पिच्छी दो। आहाहा! जंगल में चले जाते हैं। बाघ और भालू, बिच्छु और रीछ, सिंह और बाघ... आहाहा! वहाँ यह भावना होती है। आहाहा! पर का तो डर नहीं, व्यवहाररत्नत्रय करूँ, यह बात तो नहीं। आहाहा! धन्य अवतार, धन्य काल। आहाहा! ऐसा उपदेश भी मिलना कठिन है। आहाहा! ऐसी **भावना करनी चाहिए;...** तब भावना करने का अर्थ, यदि यह होवे तो कहाँ से करना? है तो नहीं। परन्तु भावना यह करना। पर्याय में भावना यह करना। आहाहा!

अब निश्चय से। अब द्रव्य आया। आहाहा! यह सद्भूतव्यवहार से कहा। शुद्धसद्भूतव्यवहार से यह बात की। अब निश्चय से करते हैं। निश्चय होवे तो यह सद्भूतव्यवहारनय प्रगट होता है। आहाहा! अरे रे! क्या हो? जगत लुट गया है। भगवान के मार्ग के अतिरिक्त, अन्यपने के मार्ग को मानकर जैन का मार्ग माना है। आहाहा! दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, इन सबसे धर्म होता है, वह सब अन्य धर्म है। वह जैनधर्म नहीं है। भावपाहुड की ८३ गाथा में यह लेख है। '**पूयादिसु वयसहियं**' यह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! यह व्रत और वैयावृत्य, स्वाध्याय और पूजा और भक्ति वह जैनधर्म नहीं है। अर..र..! इसमें बताया नहीं था? भावपाहुड़, हों! पाहुड़ है न?

कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाया हुआ अष्टपाहुड़ है। '**पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिसासणे भणियं।**' जैन शासन में त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने-जैन परमेश्वर ने जैनशासन में **जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि पूजा आदि में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है तथा मोह के क्षोभ से रहित जो**

आत्मा का परिणाम, वह धर्म है। लौकिक जन तथा अन्यमती कई कहते हैं... आहाहा! जो कोई पुण्य और व्रत में धर्म मनावे, उस लौकिकजन को अन्यमती कहा है। आहाहा! कठिन काम है। चिमनभाई! है? **कहते हैं कि पूजा आदिक शुभक्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है, परन्तु ऐसा नहीं है। जिनमत में जिनभगवान ने इस प्रकार कहा है कि—पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य है,...** वह तो पुण्य है। पूजा, भक्ति, व्रत, यात्रा, तपस्या, अपवास, वह तो सब पुण्य है; धर्म-जैनधर्म नहीं। अर..र..! ऐसी बात सुनना...

मुमुक्षु : भाग्यशाली हो, वह यह बात सुनता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मार्ग है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

इसमें पूजा और आदि शब्द से भक्ति... भगवान की पूजा, वह जैनधर्म नहीं है; वह शुभभाव है। भगवान की भक्ति, नामस्मरण, पंच परमेष्ठी का स्मरण, वह जैनधर्म नहीं है। वह राग है। अशुभ से बचने को राग आवे, परन्तु वह जैनधर्म नहीं है। **भक्ति, वन्दना...** वन्दना पंच परमेष्ठी को वन्दन करना, उठ-बैठ करके १०८ बार वन्दन करे और हजार बार करे। वह करते हैं न, क्या कहलाता है तुम्हारे? अपवास। क्या कहलाता है? उपधान। उपधान में भगवान की बहुत (उठ-बैठ) करते हैं। यहाँ भगवान कहते हैं कि बापू! यह सब व्रत और तप में **वन्दना, वैयावृत्त आदिक समझना। यह तो देव-गुरु-शास्त्र...** परद्रव्य के आश्रय से है, इसलिए वह धर्म नहीं है, वह जैनधर्म नहीं है। यशपालजी! आहाहा! शान्तिभाई! फिर यह सोनगढ़ के नाम से कोई कहे न, लोग नहीं कहें... ऐई! व्यवहार के उत्थापक हैं, निश्चय के स्थापक हैं। अरे! प्रभु! सुन न! व्यवहार होता है परन्तु वह शुभराग है, धर्म नहीं। जैनधर्म तो वीतरागभाव, वह धर्म है। आहाहा!

यहाँ पूजा, भक्ति, वैयावृत्य **यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है...** यह तो परद्रव्य के लिये होता है, इसलिए शुभभाव है; धर्म नहीं। **और उपवास आदिक व्रत है, वह शुभक्रिया है...** उपवास आदि, उपवास। एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, दस उपवास। **और उपवास आदिक व्रत है, वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है, इसलिए इनको पुण्य कहते हैं, इनका फल**

स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है। जैनधर्म नहीं है। आहाहा! भावपाहुड है। ८३ गाथा है। वह यहाँ कहते हैं।

और निश्चय से,... आहाहा! व्यवहार से केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द की भावना भावे। आहाहा! अरे! पंचम काल में प्रभु! आप एक ओर कहते हो कि केवलज्ञान नहीं होता। पंचम काल में केवलज्ञान नहीं होता और फिर कहो पंचम काल में केवलज्ञान हूँ, ऐसी भावना करनी? आहाहा! प्रभु! तू सुन, बापू! यह तो तीन लोक के नाथ, जिनेश्वरदेव की वाणी है, बापू! आहाहा! यह कोई कपोल कल्पित बात नहीं है। तीन लोक के नाथ केवली ऐसा कहते हैं कि पंचम काल में केवलज्ञान नहीं है, तथापि वे भगवान ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान है, केवलज्ञान है, मैं परमात्मा हूँ—ऐसी भावना करनी चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! है?

निश्चय से,... आहाहा! **मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ,...** यह निश्चय, त्रिकाल। वह व्यवहार था। केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट होता है न? प्रगट होता है, इसलिए पर्याय थी और प्रगट न हो, त्रिकाली वस्तु त्रिकाल आत्मा में त्रिकाल अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख भरा है, वह निश्चय है, वह ध्रुव है, वह पलटता नहीं, वह पर्याय में आता नहीं। आहाहा! वह हिलता-चलता नहीं। आहाहा! भाग्यवान को तो कान में पड़े, ऐसी बात है, बापू! आहाहा! गड़बड़-गड़बड़ ऐसी उठा दी है। लोग बाहर में प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा करना... निमित्त से ऐसा होता है... निमित्त से ऐसा होता है।

यहाँ कहते हैं कि जिस समय में जो पर्याय जीव की जो होनेवाली है, वह स्वयं से होनेवाली है, वह होगी। उस समय निमित्त भले हो, निमित्त से नहीं होगी। उस समय में उस जीव की वह पर्याय होने का क्रमबद्ध में काल है। आहाहा! जन्म-उत्पन्न होने का निज क्षण है। इसलिए प्रत्येक द्रव्य की भले भगवान की वाणी सुने परन्तु उस समय वह ज्ञान उत्पन्न होने का स्वयं का स्वकाल है, तब वाणी तो निमित्तमात्र है। आहाहा! वाणी से भी ज्ञान नहीं होता। कठिन पड़ता है। ऐई! यशपालजी! क्या करना? यह सब व्यवहार...

निश्चय से, मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ,... उसमें-व्यवहार में यह कहा था कि शुद्धसद्भूतव्यवहार से अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाववाला, वापस हों! वह पर्याय भी अमूर्त और

अतीन्द्रियस्वभाव है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, वह भी अमूर्त, सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्धसद्भूतव्यवहार है। आहाहा! **निश्चय से, मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ,...** स्वभाविक ज्ञानस्वभाव स्व... स्व-भाव। स्व अर्थात् मेरा भाव ही शुद्धज्ञान है। प्रगटना या नाश होना, ऐसा मुझमें है ही नहीं। आहाहा! निश्चय से तो मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान प्रगट होना या ज्ञान का व्यय होना या कम होना या बढ़ना, वह मेरी चीज में है ही नहीं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन का विषय। सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय यह है। आहाहा!

उसमें ऐसा कहा था कि **परमात्मा सो मैं हूँ, ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;...** यह **निश्चय से, मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ,...** आहाहा! ऐसी भावना करनी चाहिए। दोनों जगह ऐसा आया है। आहाहा! **मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ,...** ज्ञानस्वभाव। आत्मा का स्व अर्थात् अपना भाव ही भाव ज्ञान है। वह तो आत्मा जैसे नित्य है, वैसे यह स्वभावज्ञान नित्य है। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य है, अविनाशी है, वैसे ही यह ज्ञान भी नित्य अविनाशी है, वह मैं हूँ। ऐसा निश्चय से सम्यग्दृष्टि ऐसी भावना करता है। आहाहा! ऐसी सब बातों का फेरफार। अब कहाँ उन व्रत और तप को... पर्यूषण में करते हैं, वहाँ धर्म... धर्म... धर्म... धर्म... हो गया मानो। फिर रथ निकालते हैं, उसमें व्रत लेते हैं, ब्रह्मचर्य लेते हैं। मानो सात व्यक्तियों ने बालब्रह्मचर्यरूप से, उसमें रथयात्रा निकालते हैं, मानो धर्म हो गया। इस शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे तो वह कदाचित् शुभभाव होता है; वह धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बात है। देवीलालजी! ऐसी बात है, प्रभु! मार्ग तो ऐसा है। अरे! जगत को जँचे, न जँचे, उसे घड़ में आवे, न आवे, कभी अन्दर निवृत्तस्वरूप क्या है अन्दर? निवृत्त का पिण्ड पूरा पड़ा है। जिसमें पर्याय की प्रवृत्ति भी नहीं। निर्मल केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई है, वह भी जिसमें नहीं है। आहाहा! वह तो निश्चय ध्रुव सहजज्ञानस्वरूप है। केवलज्ञान तो प्रगट पर्याय है।

मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ,... मैं सहजज्ञानस्व-रूप। मेरा स्वरूप ही सहजज्ञान है। मैं एक सहजज्ञानस्वरूप ही हूँ। सहजज्ञानस्वभाव हूँ। स्वभाव अर्थात् मेरा सहज ज्ञान ही स्वभाव है। जैसे मैं त्रिकाल हूँ, वैसे मेरा ज्ञानस्वभाव, स्व.. भाव, भाववान आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है। आहाहा! यहाँ से कहाँ जाना? लो, यहाँ तो वह व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्रत करो, तप करो, यह करो। अब उसे यहाँ ले

जाना। आहाहा! प्रभु का मार्ग तो ऐसा है। भगवान का तो विरह पड़ा है। भरतक्षेत्र में परमात्मा तो रहे नहीं। महाविदेह में रह गये हैं। किसी को केवलज्ञान होवे, ऐसी शक्ति नहीं रही। आहाहा! उसमें ऐसी बात करना और उल्टी बातों का निषेध करना जगत को कठिन पड़ता है। आहाहा!

प्रभु तो महाविदेह में विराजते हैं, वे ऐसा कहते हैं। महाविदेह में प्रभु विराजते हैं। उनकी वाणी में यह आया है। उस वाणी में आचार्यों ने गूँथणी की है। आहाहा! सब माल तीर्थंकर के घर का है। यह बात तो सब... आहाहा! क्या कहलाता है ?

मुमुक्षु : आड़तिया होकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आड़तिया होकर माल बेचते हैं। बीच में-आड़तिया... प्रभु ऐसा कहते हैं, भाई! भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक बार तो स्थिर हो जाए ऐसा है। आहाहा!

उसमें मैं हूँ, ऐसा था। यह भी मैं हूँ - ऐसा ही है। आहाहा! वह मैं हूँ, यह परमात्मा की पर्याय की अपेक्षा से (बात) थी। यह द्रव्य-वस्तु अपेक्षा से बात है। आहाहा! मैं परमात्मा **सहजज्ञानस्वरूप हूँ,...** स्वभाविक ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान प्रगट होना और ज्ञान आवृत्त होना या ढँकना या कम होना, वह कुछ मुझमें है ही नहीं। एक सहजज्ञान का पिण्ड प्रभु मैं आत्मा हूँ। निश्चय से त्रिकाल सहजज्ञान (हूँ)। केवलज्ञान की पर्याय भी स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यह तो ज्ञानगुण स्वभाव त्रिकाल है, ऐसी केवलज्ञान की अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्यायों का पिण्ड ज्ञानगुण है। यह त्रिकाल सहजज्ञानस्वरूप है। आहाहा!

मैं सहजदर्शनस्वरूप हूँ,... स्वभाविक दर्शनस्वरूप हूँ। देखना-देखना-दृष्टा। पहले में ज्ञाता। स्वभाविक ज्ञातास्वरूप हूँ। ज्ञातास्वरूप करूँ और करूँ तो ज्ञाता, ऐसा नहीं। स्वभाविक ज्ञातास्वरूप हूँ। स्वभाविक अर्थात् अपने से ही उसका दृष्टास्वरूप हूँ। आहाहा! ओहो! **मैं सहजचारित्रस्वरूप हूँ...** आहाहा! मैं सहजस्वभावचारित्र त्रिकाली चारित्रस्वरूप हूँ। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायस्वभाव... आहाहा! ऐसी कठिन बात है। वह व्यवहार की बातें सुने। दस-दस हजार लोग इकट्ठे हों और लोग प्रसन्न हो जायें। आहाहा! भारी धर्म किया, भारी धर्म हुआ। आहाहा!

भाई! प्रभु का मार्ग अलौकिक है। दुनिया निन्दा करे तो निन्दा करो। नियमसार में आता है न? नियमसार में। कि निन्दा करे तो निन्दा करो, इष्ट मार्ग यह है, बापू! इसकी निन्दा करो तो करो, तुम्हें न रुचे तो इसका विरोध करो। दूसरा कुछ हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वभाविक दर्शनस्वरूप हूँ। **मैं सहजचारित्रस्वरूप हूँ...** चारित्र प्रगट होता है, वह नहीं। चारित्र अर्थात् अकषायभाव, वीतरागभाव। मैं वीतरागभावस्वरूप ही हूँ। चारित्र अर्थात् वीतरागभाव प्रगट हो, वह पर्याय है। यह तो वीतरागभावस्वरूप ही हूँ। आहाहा! सम्यक्दृष्टि अपने आत्मा को ऐसा मानता है। किसी का किया और करना और यह मदद करूँ, लूँ-दूँ, यह समकित दृष्टि नहीं मानता। आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय को भी जहाँ हेय मानता है, आहाहा! व्यवहार-व्यवहार, सद्भूतव्यवहारनय को भी व्यवहार मानता है, केवलज्ञान को भी व्यवहार मानता है। आहाहा! यह त्रिकाली चारित्रस्वरूप हूँ। अकषायस्वरूप विकाररहित शान्त.. शान्त.. शान्ति का समुद्र प्रभु! शान्ति का सागर आत्मा चारित्रस्वरूप ही त्रिकाल हूँ। आहाहा! **तथा मैं सहजचित्शक्तिस्वरूप हूँ,...** सहजचित्ज्ञान का वीर्य। ज्ञान का वीर्य जो बल, वह सहजस्वरूप है। मेरा बल कोई पर्याय में आवे तो बलवन्त, ऐसा कुछ नहीं है। मैं स्वभाव से बलवन्त ही हूँ। आहाहा!

सहजचित्... ज्ञानशक्ति। ज्ञान का बल है, आनन्द का बल है, श्रद्धा का बल है, वह त्रिकाली है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश लड़कों को छोटों को भी यह! ऐसा मार्ग तो यह है न, भाई! क्षण में देह पड़ जाती है, देखो न.. आहाहा! वह देखो न, बेचारा क्षण में मर गया। हिम्मतभाई का, मनसुख का लड़का यहाँ था न... यहाँ से ऐसा... फिर विवाह हुआ था और छोड़ दिया था। कल अकस्मात् हुआ और मर गया। यह हिम्मतभाई का मनसुख, उसका छोटा तीसरे नम्बर का लड़का। यहाँ बहुत दिन रहता था। लट्ठ शरीर लट्ठ। चाहे जैसे हुआ अकस्मात् हुआ, उड़ गया। देह की स्थिति कैसी? बापू! आहाहा! अरे! राग और पुण्य-पाप के परिणाम भी जहाँ आत्मा के नहीं... आहाहा! अरे! जहाँ केवलज्ञान की पर्याय भी आत्मा की नित्य नहीं। आहाहा! वह भी सद्भूतव्यवहारनय से है। पर्याय है। यह तो अनन्त-अनन्त गुण का धनी, अनन्त शक्ति, चित्शक्तिसम्पन्न, ज्ञानशक्ति, ज्ञानबल, दर्शनबल, आनन्दबल, शान्तिबल, ऐसा अनन्त बल से भरपूर भगवान त्रिकाल हूँ। मेरे बल में कभी

हीनता नहीं आयी। आहाहा! ऐसी वस्तु है। कहो, झवेरचन्दभाई! तुम्हारे आंकडिया-फांकडिया में कहीं ऐसा कहाँ था? आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का फरमान है। आहाहा! ऐसा क्षणभंगुर स्वरूप। राग क्षणभंगुर, अरे! केवलज्ञान नाशवान! क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय नाशवान है और मैं त्रिकाली अविनाशी हूँ। आहाहा! ऐसी भावना समकिती को करनी चाहिए।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)